Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 1 | May 2025 - October 2025 | pp. 6-12

प्राचीन भारत में कर व्यवस्था

डॉ. अवधेश कुमार शर्मा
सह आचार्य, संस्कृत
आयुक्तालय, कॉलेज शिक्षा राजस्थान, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

किसी भी राज्य के सफल संचालन हेतु धन की आवश्यकता होती है। आधुनिक कल्याणकारी राज्यों की अवधारणा में एवं अन्त्योदय की संपूर्ति के निमित्त धन की महत्ता बढ़ जाती है। अतः प्रजा के योग-क्षेम हेतु राजा सीमित कराधान की व्यवस्था किया करते थे। प्राचीन भारत में वैदिक काल से ही कुछ अस्पष्ट कराधान के तत्त्व परिलक्षित होते हैं। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में इसके नामोल्लेख, बलि, भाग, उपकृत आदि नामों से मिलते हैं। प्रारंभिक काल में कर के रूप में अन्न, पशुधन एवं अन्य उपज को स्वीकार किया जाता रहा। वस्तुतः प्रारम्भिक अवस्था में राजा अपनी प्रजा से स्वैच्छिक कर वसूल किया करते थे। जिसका उपयोग सामान्यतः धार्मिक कार्यों एवं राज्य की सुरक्षा व्यवस्था हेतु किया करते थे। वैदिक काल के उपरान्त महाजनपद काल में कर व्यवस्था कुछ व्यवस्थित रूप में सामने आई जिसमें भूमि कर मुख्य था। महर्षि कौटिल्य के समय कर व्यवस्था वैज्ञानिक एवं सुगठित रूप से व्यवस्थित हुई। इसके लिए कौटिल्य द्वारा अपने ग्रंथ "अर्थशास्त्र" में कर व्यवस्था को संहिता बद्ध किया गया। वस्तुतः कौटिल्य की कर व्यवस्था विश्व की प्रथम सुव्यस्थित कर व्यवस्था मानी जाती है। जिसमें भूमि कर के अतिरिक्त सीमा कर, वन कर, व्यापार कर एवं पशु कर की भी व्यवस्था थी। उपर्युक्त करों के माध्यम से मौर्य कालीन शासक अपने राज्य में अपेक्षाकृत अधिक विकास कार्य करवाने में समर्थ रहे। वैदिक काल से लेकर वर्तमान आधुनिक राज्यों की कर प्रणाली का व्यवस्थित, क्रमिक एवं शोधपरक अन्वेषण ही प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य है।

संकेताक्षर—*कराधान, भूमिकर, वैदिककाल, कौटिल्य, जीएसटी 2.0, अन्त्योदय, लोक कल्याण*

प्रस्तावना

शासन की अन्य नीतियों के सामंजस्य पर आधारित कराधान का व्यापक उद्देश्य जनता का अधिकाधिक कल्याण करना है। तात्विक कार्यों के सम्यक् सम्पादन के लिए करों द्वारा ही शासन को आर्थिक दृढ़ता प्राप्त होती है। साथ ही सामाजिक और आर्थिक भलाई भी करों द्वारा होती है क्योंकि कर समाज में व्याप्त अत्यधिक आर्थिक विषमताओं को कम करते हैं, जिससे महार्घता और युद्धकालिक अपसंचय प्रवृत्ति को रोककर राष्ट्र में आर्थिक दृढ़ता स्थापित करने में सहयोग प्राप्त होता है।

मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत बाद में चलकर शासन ने राजस्व वृद्धि के लिए करों का आश्रय लिया था, विशेषकर ऐसे करों का जो उचित रूप से लगाए जाते थे और जिनके सम्बन्ध में शासित जनों की सहमति ले ली जाती थी। शताब्दियों तक सार्वजनिक क्षेत्रों से ही मुख्य रूप से राजस्व का संकलन किया जाता था जिसमें घरेलू उपभोग की वस्तुओं पर लगाए गए उत्पादन शुल्क और विदेशी व्यापार पर लगाए गए सीमाशुल्क का स्थान मुख्य था। दास, अधीनस्थ, किसान, विजित तथा अन्य विशेषाधिकार रहित लोगों का यह कर्तव्य माना जाता था कि वे शासकीय वर्ग के लोगों का शुल्क आदि से पोषण करें। करों को दासता के बंधन के रूप में नहीं, अपितु स्वातंत्र्य के चिह्न के रूप में मान्यता देना आधुनिक युग की बात है।

भारत में भी, प्राचीन काल से वर्तमान प्रत्यक्ष कर प्रणाली किसी न किसी रूप में चलती आ रही है। मनुस्मृति और अर्थशास्त्र, दोनों में अनेक प्रकार के करों के संदर्भ मिलते है। मनु ने कहा

है कि शास्त्रों के अनुसार राजा कर लगा सकता है। उन्होंने सलाह दी थी कि करों का संबंध, प्रजा की आय तथा व्यय से होना चाहिए। मनु ने अत्यधिक कराधान के प्रति राजा को आगाह किया है कि दोनों चरम सीमाओं अर्थात करों के पूर्ण अभाव और हद से अधिक कराधान से बचना चाहिए।

प्राचीन भारत में कराधान प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध लेखक के बी सरकार ने अपनी पुस्तक "प्राचीन भारत में सार्वजनिक वित्त" (1978 संस्करण) में लिखा है कि "प्राचीन भारत के अधिकांश कर अत्यधिक उत्पादक थे। कर प्रणाली में प्रत्यक्ष करों के साथ अप्रत्यक्ष करों का मिश्रण सुरक्षित व लचीला था, हालांकि प्रत्यक्ष कर पर ज्यादा अधिक जोर था। यह कर प्रणाली का व्यापक आधार था और इस के तहत अधिकांश व्यक्ति आते थे। करों में विविधता थी और करों की व्यापक विविधता से बहुत बड़ी तथा मिश्रित आबादी की जीवन शैली परिलक्षित होती थी।"

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में, कराधान प्रणाली को वास्तविक, व्यापक और सुनियोजित व्यवस्था प्रदान की गई। कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र का बहुत बड़ा भाग वित्तीय प्रशासन सहित वित्तीय मामलों को समर्पित है। राजनीति विशेषज्ञों के अनुसार, मौर्यकालीन प्रणाली में, जहां तक कृषि का संबंध है, भूमि का स्वामित्व एक प्रकार से राज्य के पास था और भू-राजस्व की वसूली, राज्य की आय का एक प्रमुख स्रोत थी। राज्य द्वारा कृषि उत्पादन के एक हिस्से को, जो कि आम-तौर पर कृषि उपज का छठा हिस्सा था, ही वसूल नहीं किया जाता था अपितु वानिक उपज तथा धातुओं आदि के खनन से भी करों की वसूली की जाती थी। नमक कर भी राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत था तथा इसकी वसूली, इसकी निकासी के स्थान पर की जाती थी।

कौटिल्य ने दूसरे देशों के साथ किए जा रहे व्यापार और वाणिज्य पर विस्तार से चर्चा की है और ऐसे व्यापार को बढ़ावा देने को मौर्य साम्राज्य की सक्रिय रुचि में बताया है। माल को चीन, श्रीलंका और अन्य देशों से आयात किया जाता था और देश में आयातित समस्त विदेशी माल पर "वर्तनम्" के नाम से लेवी ली जाती थी। विदेशी माल का आयात करने वाले संबंधित व्यापारी द्वारा "दर्वोदय" नामक अन्य लेवी का भुगतान करना होता था। इसके अतिरिक्त, कर वसूली को बढ़ाने के लिए, सभी प्रकार की नौकाओं पर शुल्क लगाया गया था।

भारत में 18वीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भूमिकर के अतिरिक्त देश के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष कर भी लगाए जाते थे। किंतु इन सब में भूमिकर ही प्रधान था। कुछ काल तक अंग्रेजों ने उनमें से अधिकांश उद्ग्रहणों को जारी रखा किंतु कालांतर में उन्हें बंद कर दिया। एक समय ऐसा भी था जब भूमिकर के अतिरिक्त देश में अन्य किसी प्रकार का प्रत्यक्ष कर नहीं ग्रहण किया जाता था। भारत में सन् 1860 में प्रथम बार आयकर की व्यवस्था की गई। 1886 में इसे भारतीय कर प्रणाली का स्थायी अंग बना दिया गया, किंतु इसके पूर्व यह शासनव्यवस्था में उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयों के निवारण के लिए समय-समय पर अल्प मात्रा में ही लगाया जाता था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय शासन का खर्च अत्यधिक बढ़ जाने के कारण इस कर का महत्व बढ़ गया और राजस्व वृद्धि का यह एक प्रमुख स्रोत बन गया। सन् 1917 में क्रमानुपातिक अधिकार (सुपरटैक्स) तथा 1918 में अधिलाभकर (ऐक्सेस प्रॉफिट टैक्स) का प्रवर्तन किया गया।

भारत में आयकर लगाने और वसूल करने की पद्धति को नियमित रूप देने के लिए सन् 1922 में एक समेकित (कॉनसालिडेटेड) अधिनियम पारित किया गया था। भारतीय आयकर अधिनियम 1922 की संज्ञा से ज्ञात यह अधिनियम 31 मार्च 1962 तक व्यवहार में रहा। समय-समय पर इसमें संशोधन किए जाते रहे और अंत में यह आवश्यक हो गया कि इसे बदल दिया जाए। सितंबर, 1961 में राष्ट्रपति ने आयकर अधिनियम 1961 को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और 1 अप्रैल 1962 से इस नए अधिनियम ने सन् 1922 के अधिनियम का स्थान ले लिया।

वैदिक काल में कर व्यवस्था

प्राचीन भारतीय काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि तत्समय राज्य के संचालन हेतु एवं राजस्व अभिवृद्धि हेतु कर के रूप में पशुधन, अन्न एवं वस्त्र स्वीकार किए जाते थे। कर संग्रहण का मुख्य उद्देश्य राज्य संचालन के साथ-साथ जनता की भलाई हुआ करता था। ऋग्वेद में एक मंत्र में कहा गया है—

"राज्ञा प्रजा यथार्थं समन्विताः दधातु करम्"[1]

अर्थात राजा द्वारा प्रजा से लिया जाने वाला कर न्यायपूर्ण व संतुलित होना चाहिए इसी प्रकार यजुर्वेद में भी कर संग्रहण

व्यवस्था के अन्तर्गत अन्न के रूप में कर संग्रह का वर्णन किया गया हैं। यथा—

"भूयो भूयः अन्नं दधात् राजा प्रजाभ्यः हितकरम्"[2]

अथर्ववेद में भी कर संग्रह व्यवस्था के अन्तर्गत प्रजा के सुखी रहने तक ही कर संग्रह का प्रावधान किया गया है। यथा—

"सर्वे प्रजाः सुखिनो भवन्तु करस्य अधिकं न कृत्वा"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में कर व्यवस्था अत्यधिक न्याय पूर्ण प्रजा कल्याण से परिपूर्ण एवं संतुलित थी।

मनुस्मृति में कर व्यवस्था

भगवान मनु द्वारा रचित मनुस्मृति प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का अनुपम ग्रंथ है जिसमें न सिर्फ भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का दिग्दर्शन होता है अपितु यह संपूर्ण धर्मशास्त्र भी कहा गया है। मनुस्मृति में केवल धर्म एवं आध्यात्मिक सामाजिक नियमों का ही उल्लेख नहीं अपितु राजनीति एवं कराधान का भी विशेष उल्लेख प्राप्त होता है। यथा—

"भूयः पृथिव्यां यः शास्त्रवित् करं ग्रहिष्यति
षड्भागमुत्तमं हि कर्षयेन्न्यायसम्पदम्॥"[4]

अर्थात् राजा को षडांश से अधिक कर नहीं वसूलना चाहिए साथ ही प्रजा की क्षमता के अनुसार कर संग्रहण व्यवस्था होनी चाहिए। कर संग्रहण के दौरान राजा का यह दायित्व है कि उसे भली भांति यह पता हो कि प्रजा के पास उत्पादन कितना है, साथ ही कर संग्रह न तो बहुत ज्यादा हो न बहुत कम।

कृषकानां हि उत्पादनं विदित्वा करं प्रहनम्।
न हि वृद्धं वा न्यूनं वा प्रजा प्रसादाय हितम्॥[5]

मनु के अनुसार, राजा को करों की वसूली की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि प्रजा करों की अदायगी करते समय कठिनाई महसूस न करें। उन्होंने कहा था कि व्यापारियों तथा कारीगरों को चांदी और सोने के व्यापार में होने वाले अपने लाभ का पाँचवाँ हिस्सा और किसानों को अपनी उपज का छठा, आठवाँ या दसवां हिस्सा, अपनी हालात के आधार पर, कर के रूप में भुगतान करना चाहिए।

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पर्थिवः।
प्रतिभाग च दण्ड च सः सद्यो नरक व्रजेत्॥[6]

(जो राजा प्रजा की रक्षा न करता हुआ, प्रजा से अन्न का छठा भाग, कर तथा शुल्क (चुंगी) आदि और दण्ड के भाग को ग्रहण करता है वह राजा शीघ्र ही दुर्गति को प्राप्त हो नरक में जाता है।)

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्या वार्योकोवत्सषट्पदा।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्रादाज्ञाब्दिकः करः॥[7]

(जैसे जोंक, बछड़ा और भंवरा थोड़े-थोड़े भोग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेवे।) यथा—

फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम्।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्र कल्पयेत्सतत करान्॥[8]

(जैसे राजा और कर्मों का कर्ता राजपुरुष व प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त होवे, वैसे विचार करके राजा तथा राज्यसभा राज्य में कर-स्थापन करे।)

क्रयविक्रयमध्वानं भक्त व सपरिव्ययमू।
योगक्षेम च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान्॥[9]

(खरीद और बिक्री भोजन तथा भरण-पोषण का व्यय और लाभ इन सब बातों पर विचार करके राजा को व्यापारी से कर लेने चाहिए।)

मनु द्वारा इस विषय पर दिए गए विस्तृत विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्राचीन समय में भी एक सुनियोजित कराधान प्रणाली अस्तित्व में थी। केवल यही नहीं, अभिनेताओं, नर्तकों, गायकों और नाचने वाली लड़कियों जैसे विभिन्न वर्गों के लोगों पर भी कर लगाए जाते थे। करों की अदायगी, सोने के सिक्कों, पशुओं, अनाज, कच्चे माल के साथ-साथ व्यक्तिगत सेवा प्रदान करके भी की जाती थी।

अतः मनुस्मृति में कर व्यवस्था उत्पादन का छठा भाग एवं कर व्यवस्था लाभ के आधार पर निर्धारित की गई थी। वर्तमान भारतीय प्रत्यक्ष कर प्रणाली में भी प्रायः यही देखा जाता है कि न्यूनतम आय वाले नागरिकों से कर नहीं लिया जाता है जबकि मध्यम आय वालों से मध्यम प्रकार का कर एवं अत्यधिक आय के वर्ग से सुपर रिच टैक्स वसूला जाता है। वस्तुतः आधुनिक कराधान व्यवस्था भी प्राचीन मनुस्मृति से मिलती जुलती जान पड़ती है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कर व्यवस्था

महर्षि चाणक्य कृत प्राचीन ग्रंथ अर्थशास्त्र में विभिन्न विषयों का वर्णन अत्यन्त वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण से किया

गया है। चाणक्य का यह ग्रंथ कालजयी ग्रंथ है जो सैंकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त भी वर्तमान में भी प्रासंगिक है।

कौटिल्यकृत न्याय व्यवस्था आज भी विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती है एवं न्याय संहिता में भी उपयोगी है साथ ही कौटिल्य की राजधर्म प्रणाली वर्तमान में अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। कौटिल्य ने भी महर्षि मनु के समान भूमि से प्राप्त कुल उत्पन्न अन्न का छठा भाग ही कर के रूप में संग्रह करने का निर्देश दिया हुआ है। यथा—

"भूम्याः लाभानां षष्ठांशः करः प्रकल्पयते॥"[10]

कर संग्रह के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि कर संग्रह का उद्देश्य राज्य वैभव में अभिवृद्धि की अपेक्षा राज्य की स्थिरता व प्रजा कल्याण होना चाहिए। यथा—

"करस्य मूलं राज्यस्य स्थिरता च प्रजा सुखं च॥"[11]

कौटिल्य के अनुसार कर संग्रह न्याय संगत होना चाहिए अर्थात् कराधान न तो अत्यधिक हो न ही बहुत कम होना चाहिए। कर संग्रह का उद्देश्य राज्य के सुचारु संचालन एवं प्रजाहित होना चाहिए। यथा—

"नाभिवृद्धं न च न्यूनं करः प्रजापलये हितकरः॥"[12]

आधुनिक राज्यों के कराधान व्यवस्था एवं भारतीय कर व्यवस्था की प्रणाली के अनुसार ही कौटिल्य प्रजा के उत्पादन एवं आय के अनुपाल में कराधान की व्यवस्था का प्रावधान करते हैं। यथा—

"प्रत्येकस्य उत्पादनशक्त्या करः नियोज्यः॥"[13]

कौटिल्य के अनुसार कर व्यवस्था न्यायपूर्ण एवं लोकतांत्रिक होनी चाहिए एवं साथ ही राज्य हित में होनी चाहिए। यथा—

"संगठित एवं नियमित वसूली सदा राज्याय हितकराः॥"[14]

इस प्रकार संक्षेप में कौटिल्य की कराधान व्यवस्था में कर आय का छठा भाग, क्षमतानुसार प्रजा कल्याण न्यायपूर्ण, तार्किक होना चाहिए।

रामायणकालीन कर व्यवस्था

महर्षि वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण में कर व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि राजा अपनी प्रजा से कर तो लेना चाहिए साथ ही प्रजा का पुत्रवत् रक्षण भी करे साथ ही वह कर आय के छठे भाग से ज्यादा नहीं होना चाहिए। यथा—

अधर्मः सुमहान् नाथ भवेदस्य तु भूपतेः।
यो हरेत् बलिम् षड्भागं न च रक्षति पुत्रवत्॥[15]

वाल्मीकि द्वारा कराधान व्यवस्था को अत्यधिक लोकतांत्रिक बनाते हुए इसकी तार्किकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि राजा को न तो अपनी प्रजा को अत्यधिक पीड़ित करना चाहिए और न ही उनके श्रम व उत्पादन को नष्ट करना चाहिए अपितु अपनी प्रजा का चहुँ और रक्षण एवं पोषण करना चाहिए। वस्तुतः उसी राजा को अपनी प्रजा पर शासन का अधिकार होता है जो प्रजा रक्षण का गुरु भार वहन करता है। यथा—

नाभ्यवकर्तयेद्राज्यं नापि संक्षपयेत् प्रजाः।
पुष्णीयात्सर्वतः प्रजाः पुष्णन् हि प्रजया वशी॥[16]

महर्षि वाल्मीकि मधुमक्खी का दृष्टांत बताते हुये कहते है कि मधुमक्खी पुष्प से मधु तो ग्रहण करती है किन्तु कभी भी पुष्प को नष्ट नहीं करती है इसी प्रकार राजा को भी अपनी प्रजा से उतना ही कर लेना चाहिए जितने से प्रजा को कष्ट न हो। यथा—

यथामधुहरः पुष्पं पक्षिका नातिवर्तते।
एवं गृहीयात् करं राजा सर्वप्रजासु मानवः॥[17]

रामचरितमानस में कर व्यवस्था

तुलसीदासकृत रामचरित मानस भारतीय जनमानस में रच बस गया है। यह ग्रंथ शासन व्यवस्था, नीति एवं समाज व्यवस्था के साथ साथ संपूर्ण धार्मिक ग्रंथ भी है। रामचरित मानस में तुलसीदास द्वारा राम राज्य वर्णन के दौरान कराधान व्यवस्था का दिग्दर्शन किया है। राम राज्य में कर व्यवस्था धर्म एवं नीति के अनुकूल थी। प्रजा से प्राप्त कर का उपयोग प्रजा की सुरक्षा, शिक्षा, व्यवस्था, धर्म संरक्षण एवं सामाजिक कार्यों हेतु, किया जाना था। गोस्वामी तुलसीदास जी राम राज्य वर्णन के दौरान बताते है कि राम राज्य में प्रजा त्रिविध ताप से मुक्त हैं। प्रजा परस्पर प्रेम पूर्वक निवास करते हुए स्वधर्म में निरत थी। यथा—

दैहिक दैविक भौतिक तापा,
राजराज नहि काहुही व्यापा।
सब नर करहि परस्पर प्रीति,
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति॥[18]

इससे स्पष्ट है, कि तत्कालीन प्रजा दैहिक, दैविक दुखों से मुक्त थी एवं अपना कर्तव्य पालन करती थी। अर्थात् शासन व्यवस्था न्यायपूर्ण एवं कल्याणकारी थी।

राम राज्य में राजा श्रेष्ठ लोगों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे जबकि कि दुर्जन व्यक्ति दण्ड के भागी हुआ करते थे।

अर्थात् राजा साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति के अनुसार कार्य करते थे। इससे स्पष्ट है की राजा सज्जनों के साथ उदारता एवं दुर्जनों के साथ कर्तव्य व्यवहार करते थे। यथा—

खल दण्ड पावही सज्जन पूजही
कोमल कठोर मधुर मधु दूजही,[19]

रामराज में भरपूर बारिश होती है, इसके कारण धरती शीतल सुगंध से युक्त फल-फूलों से परिपूर्ण है। इस कारण सभी नर नारी सुखपूर्वक निवास करते है। यथा—

बरषत सकल लोक सुखकारि।
शीतल अमल सुगंध सुहारि॥
फलहि फुलहिं नित भूमि अकाशा।
सुखी सबनहिं रहे नरनारि॥[20]

उक्त से स्पष्ट है कि कृषि उपज बहुतायत में होने पर प्रजा अत्यन्त सुखी एवं समृद्ध है अर्थात राजा द्वारा प्रजा पर कर का ज्यादा भार नहीं है।

रामचरित मानस में बालकाण्ड के अन्तर्गत राजा दशरथ अपने राज्य संचालन इस प्रकार करते है कि अपनी प्रजा का जीवन कष्टमुक्त और सुरक्षित रहे। साथ ही कराधान का मुख्य उददेश्य केवल धन संग्रह नहीं अपितु प्रजा का कल्याण हो।

सुनहु प्रभु सब विधि प्रजा सुखी होय।
कर लेहू जितना पर जान न खेय॥[21]

इस प्रकार राजा राम के राज्याभिषेक के दौरान अयोध्या काण्ड में तुलसीदास जी राजा राम की कर व्यवस्था की टिप्पणी करते है कि रामचंद्र जी अच्छी प्रकार से विचार करके प्रजा के साथ न्याय करेंगे तथा प्रजा से कर संग्रह उतना ही करेंगे जितने से प्रजा सुखपूर्वक रह सके। यथा-

रामचंद्र सुजान, न्याय करहिं प्रजा पर
कर बसहिं उतना, जेंहि सब सुखी रहें घर॥[22]

रघुवंश महाकाव्य में कर व्यवस्था

कुलगुरु महाकवि कालिदास द्वारा रचित रघुवंश महाकाव्य में भी तत्कालीन राजाओं द्वारा कर संग्रहण की न्यायपूर्ण, धर्मसम्मत, नीतिपूर्ण, एवं पक्षपात रहित व्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है। कर संग्रह में रघुवंशी राज प्रजा के सुख एवं समृद्धि को केन्द्र में रखते थें। प्रजा की आय के अनुरूप कर व्यवस्था थी। जो कि छठे भाग से अत्यधिक नहीं थी।

जिस प्रकार महासागर अपनी लहरों से जल रस को ग्रहण करता है परन्तु उसे नष्ट नहीं करता उसी प्रकार बुद्धिमान राजा को भी अपनी प्रजा से कर संग्रह इस प्रकार से करना चाहिए कि प्रजा को कष्ट न हो। साथ ही राजा के द्वारा अपनी प्रजा से संग्रहित कर का उपयोग संसार के कल्याण के लिए होना चाहिए। महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य में सूर्य के दृष्टांत के माध्यम से तत्कालीन कर व्यवस्था का वर्णन इस प्रकार से करते है कि राजा दिलीप प्रजा के कल्याण के लिए ही उनसे उसी प्रकार कर संग्रह करता जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से कर के रूप में अल्प जल ग्रहण कर सहस्त्र गुना बढ़ाकर पृथ्वी पर बरसाता और पृथ्वी को धन सम्पत्ति से परिपूर्ण कर देता है उसी प्रकार राजा भी अपनी प्रजा से अल्प मात्रा में कर संग्रह कर उसके बदले प्रजा को सहस्त्र गुना सुख सुविधाएं प्रदान करता है। यथा—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स वाभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्त्रगुणमुत्स्त्रस्टुमाते हि रसं रविः॥[23]

कालिदास के अनुसार रघुवंशी राजा लोभ रहित होकर प्रजा से धन संग्रह करते थे, अर्थात् उनका कर संग्रहण का उद्देश्य राजकीय खजानों को भरके विलासिता नहीं अपितु लोककल्याण था। यथा—

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरम्।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥[24]

रघुवंशी राजाओं का वर्णन करते हुए कालिदास कहते है कि रघुवंशी राजा धन संग्रह करने का कार्य भी केवल पात्र को दान देने के लिए किया करते थे तथा प्रजा के कल्याण हेतु धन का उपयोग करते थे। यथा—

त्यागाय संभृतार्थाना सत्याय त्रितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥[25]

महाकवि कालिदास द्वारा अपने विश्व प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी राजा को उपज के षष्ठ भाग से राज्य निर्वाह करने वाला बताया है। यथा—

भानुः सकृद्युक्त तुरंग एव
रात्रिदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेष सदैवाहित भूमिभारः
षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः॥[26]

निष्कर्ष

उक्त विमर्श से स्पष्ट है कि भारतीय कर प्रणाली अपनी शैशव अवस्था अर्थात् वैदिक काल से लेकर मौर्य काल तक अत्यन्त सरल, निष्पक्ष, न्यायपरक, तार्किक एवं विकासोन्मुखी रही है। कर व्यवस्था किसी भी राज्य की रीढ़ होती है। राजस्व के माध्यम से ही राज्य की सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता एवं सामाजिक समानता का निर्माण किया जा सकता है। किसी भी राज्य के राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत कर ही होता है। इसी से राज्य की प्रशासनिक मशीनरी सुव्यवस्थित रूप से संचालित होती है। राज्य की न्याय व्यवस्था एवं सामाजिक सुरक्षा की योजनाएँ कर संग्रह पर ही आश्रित होती है।

राज्य के विकास में महत्वपूर्ण भागीदारी निभाने वाले प्रमुख घटक जिनमें सड़क, पुल, विद्यालय, औषधालय, बांध, विद्युत उत्पादन, इकाइयां आदि कराधान पर ही निर्भर रहती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक राज्यों की अर्थव्यवस्था के संदर्भ में कर संग्रहण से राज्य में आर्थिक स्थिरता के साथ-साथ महंगाई नियंत्रण भी की जा सकती है। वर्तमान भारतीय कर प्रणाली अत्यधिक प्रगतिशील एवं समावेशी होने के कारण उच्च आय वर्ग वालों से अधिक टैक्स लेकर आय एवं परिसम्पतियों का संतुलन स्थापित किया करती है, जिसमें अमीरी एवं गरीबी में पर्याप्त संतुलन बना रहता है। भारत में सुपर रिच टैक्स तार्किक कराधान प्रणाली राज्य के व्यापार एवं उद्योगों के नियमन में भी सहयोग प्रदान करती है। प्रजा जब राज्य को कर का भुगतान करती है, तो उसके मन में एक स्वतः स्फूर्त सामाजिक अनुशासन एवं राज्य के प्रति उत्तरदायित्व की उदात्त भावना का बोध होता है, तथा राज्य के विकास में स्वयं के योगदान से गौरव का अनुभव करती है। पर्याप्त मात्रा में राजस्व जुटाकर राज्य आत्मनिर्भर एवं आर्थिक रूप से शक्ति सामर्थ्य बनते है एवं पर्याप्त मुद्रा भण्डार के कारण बाह्य आपदा अथवा आक्रमण के समय स्वयं को मजबूत स्थिति में रख पाता है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि कर व्यवस्था किसी भी राष्ट्र की सम्प्रभुता के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी अपने राज्य के कल्याण के लिए भी आवश्यक है। लेकिन कर प्रणाली समानता, न्याय परकता, एवं तार्किक होनी चाहिएः जिसमें प्रजा बिना कष्ट उठाकर टैक्स अदा कर सके। पिछले दिनों केन्द्र की मोदी सरकार द्वारा कर सुधार के अन्तर्गत जीएसटी 2.0 लागू कर इसे अधिक तार्किक एवं सुसंगत बनाने का प्रयास किया गया, जिसका उद्देश्य कर संग्रहण में बढ़ोतरी एवं जनता पर करो का भार कम करके सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना था। जीएसटी 2.0 के अन्तर्गत मेडिकल पोलिसी में 18 प्रतिशत जीएसटी को पूर्ण रूप से समाप्त करना एवं अनेक उच्च दर वाली टैक्स स्लेब को 5 प्रतिशत तक सीमित किया गया। इन सुधारों से सर्वाधिक प्रभावित निम्न अथवा मध्य वर्ग की जनता सीधे तौर पर प्रभावित होगी। सरकार के उक्त प्रयास निकट भविष्य में आम जनता के लिए लाभकारी सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. अथर्ववेद
4. मनुस्मृति, गीताप्रेस गोरखपुर-1975
5. मनुस्मृति, गीताप्रेस गोरखपुर-1975
6. मनुस्मृति, गीताप्रेस गोरखपुर-1975
7. मनुस्मृति, गीताप्रेस गोरखपुर-1975
8. मनुस्मृति, गीताप्रेस गोरखपुर-1975
9. मनुस्मृति, गीताप्रेस गोरखपुर-1975
10. विद्यालंकार, प्राणनाथ, कौटिल्य अर्थशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर
11. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर
12. उपर्युक्त
13. उपर्युक्त
14. उपर्युक्त
15. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग -6, श्लोक-11, गीताप्रेस गोरखपुर, 2015, पृ.सं. 565
16. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, 2015
17. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, 2015
18. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, श्री रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, दोहा-2, गीताप्रेस गोरखपुर, 2023
19. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, श्री रामचरित मानस, बालकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, 2023

20. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, श्री रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, 2023
21. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, श्री रामचरित मानस, बालकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, 2023
22. पोद्दार, हनुमान प्रसाद, श्री रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, 2023
23. त्रिपाठी, डॉ. श्रीकृष्णमणि, रघुवंश महाकाव्यम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2004, पृ.सं. 10
24. उपर्युक्त, पृ.सं. 11
25. उपर्युक्त, पृ.सं. 4
26. चतुर्वेदी, डॉ. वसुदेव कृष्ण, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1981-82, पृ.सं. 82